पश्चिम घाटों में मिले भारत के प्राचीन निवासी

वे कौन से कारक हैं, जिनने भारत को मनुष्य के उद्भव के लिए आदर्श स्थान बना दिया? हम पश्चिमी घाटों एवं मध्य भारत, दोनों ही जगहों में वाई गुणसूत्रों एवं संपूर्ण जीनोम अध्ययनों दोनों में ही वास के प्राचीन संकेत देखते हैं। कबीलों के रूप में प्रारंभिक मनुष्य अपने जोड़े के साथ आए और जंगलों तथा गुफाओं में रहने लगे

■ आर. एम. पिचप्पन
चेत्तीनाद एकेडमी ऑफ रिसर्च एंड एजुकेशन, राजीव गांधी सलाई, केलाम्पक्कम (चेन्नई)
प्रोफेसर, मदुरई कामराज विश्वविद्यालय

प्रतिरक्षा विज्ञान, प्रतिरक्षा आनुवांशिकी, संक्रामक बीमारियों, मानव जीनोमिक्स एवं भारत में जनसंख्या आनुवांशिकी के प्रवर्तक ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत के तटों के जरिये अफ्रीका से ऑस्ट्रेलिया तक मनुष्य के पहले तटीय स्थानांतरण का अहम साक्ष्य मुहैया कराया। इसके प्रकाशन के बाद, 2001 में पीएनएएस में पेपर के मुख्य लेखक स्पेंसर वेल्स ने 'जर्नी ऑफ मैन' वृत्तचित्र का निर्माण किया। बीबीसी ने वरिष्ठ लेखक सर वॉल्टर बॉडमर का साक्षात्कार किया और जब उन्होंने कहा कि 'हम यूरोपवासी भी अफ्रीका के ही वंशज हैं' तो विश्व को यकीन करना पड़ा। भारत एवं विश्व में लोगों के बसने के रहस्य को सुलझाने की उनकी कोशिशों में हमारी यात्रा की यह शुरुआत थी। स्पेंसर वेल्स ने आईबीएम, एनजीएस एवं अमेरिका के टेड वेट फाउंडेशन को 100,000 लोगों के अध्ययन द्वारा विश्व के आधुनिक मानव 'औपनिवेशीकरण' के अध्ययन के लिए 2 करोड़ डॉलर वसीयत में देने को विश्वास दिला दिया। इन 100,000 लोगों के अध्ययन में प्रोफेसर पिचप्पन 10 वैश्विक केंद्रों में से एक थे, जिन्होंने भारत भर में 12,000 लोगों, दिलचस्प जातियों और जनजातियों के नमूने लिए। यह परियोजना 2006 से 2013 तक चलती रही। इसके परिणाम चौंकाने वाले रहे। इसने लोगों के बसने और सांस्कृतिक उद्भव पर कई पुरानी तथा पारंपरिक मान्यताओं को ध्वस्त किया।

भारत आधुनिक मानव जातियों द्वारा सफलतापूर्वक आधिपत्य किया जाने वाला दूसरा महादेश है। जीव-जंतुओं, वनस्पतियों की तरह भाषायी, सांस्कृतिक एवं जीनोमिक से जुड़ी मनुष्यों की विविधताएं भी भारत में काफी अधिक हैं। यह प्रारंभिक प्रवासों, विभिन्न स्थानों में एकाकीपन, स्थानक विविधता और विस्तार तथा नवीनतम सांस्कृतिक उद्भव का परिणाम था। 'दक्षिणवर्ती रास्ते'-60,000 वाईबीपी (वर्तमान से 60,000 वर्ष पहले), मनुष्य के प्रति वर्ष 16 किलोमीटर चलने की रफ्तार के औसत से, के जरिये 'अफ्रीका से बाहर' के पहले तटीय उत्प्रवास के बाद, इस पहले मानव ने एक पुरुष वाई गुणसूत्र चिह्नक सी-एम130 के रूप में अपनी पहली निशानी छोड़ी। जैसे ही मनुष्य अफ्रीका से बाहर निकला यह पुरुष वाई गुणसूत्र चिह्नक रूपांतरित हो गयाः हमें संयोग से मदुरई से 45 किमी. पश्चिम जोथिरमणिकम गांव के एक कॉलेज के छात्र वीरुमंडी में इस पहले मनुष्य का वंशज प्राप्त हुआ। पूरा गांव इस पुरुष गुणसूत्र से निर्मित है, और ये चिह्नक भारत के दूसरे हिस्सों में भी छिटपुट रूप से प्राप्त हो जाते हैं, लेकिन जातियों एवं जनजातियों के लिहाज से सबसे अधिक विविधता और बारंबारता पश्चिमी घाटों के वर्षा की छांव वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इसके बाद मध्य पूर्व से एक पुरुष गुणसूत्र चिह्नक 'एफ' के साथ एक बार फिर एक प्रवसन भारत में बस गया। इसने देश के विभिन्न हिस्सों में और अधिक वंशावलियों और बसावटों को जन्म दिया। 'एफ' खुद पश्चिमी घाटों और मध्य भारतीय जंगलों की श्रृंखलाओं में मुख्य रूप से मौजूद है : इस वंशावली के वंशज अब दुनिया की आबादी के 90 फीसदी लोग हैं। आप एक पीपल या पवित्र बोधि पेड़ की कल्पना कीजिए। तने को सी और एफ मानें, इसकी शाखाएं विभिन्न दिशाओं में फैली हुई हैं, जिन्होंने विभिन्न वंशावलियों को जन्म दिया है, और जिन्हें अब हम भारत में देखते हैं।

भारत आधुनिक मानव जातियों द्वारा सफलतापूर्वक आधिपत्य किया जाने वाला दूसरा महादेश है। जीव-जंतुओं, वनस्पतियों की तरह भाषायी, सांस्कृतिक एवं जीनोमिक से जुड़ी मनुष्यों की विविधताएं भी भारत में काफी अधिक हैं। यह प्रारंभिक प्रवासों, विभिन्न स्थानों में एकाकीपन, स्थानक विविधता और विस्तार तथा नवीनतम सांस्कृतिक उद्भव का परिणाम था

वे कौन से कारक हैं, जिन्होंने भारत को, विशेष रूप से दक्षिणवर्ती भारत को मनुष्य के उद्भव के लिए एक आदर्श स्थान बना दिया? हम पश्चिमी घाटों एवं मध्य भारत, दोनों ही जगहों में वाई गुणसूत्रों एवं संपूर्ण जीनोम अध्ययनों दोनों में ही वास के प्राचीन संकेत देखते हैं। कबीलों के रूप में प्रारंभिक मनुष्य अपने जोड़े के साथ आए और जंगलों तथा गुफाओं में रहने लगे : दक्षिणवर्ती भारत दुनिया के सबसे स्थिर भू-भौतिकीय क्षेत्रों में एक है, वहां बहुत गहरे कब्रगाह और पुरातात्विक खोज नहीं हैं। फिर भी, विभिन्न देशी पुरुष वंशावली भाषाओं के साथ परस्पर संबंधित होते हैं, लेकिन एम एवं एनएमटी डीएनए वंशावलियों से निर्मित महिला जीन समुच्चय से संकेत मिलता है कि महिला जीन समुच्चय पहले बसने वालों से प्राप्त किए गए जबकि पुरुष पहले से बसे पुरुषों को मिटाकर सांयोगिक पद्धतियों में आएः युद्धों में यह आज भी सच साबित होता है।

मनुष्यों के भौगोलिक विस्तार में, पर्वत श्रृंखलाओं (हिंदकुश, हिमालय, विंध्याचल आदि) और नदियों (सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी आदि) और अन्य पर्वत श्रृंखलाओं जैसी प्राकृतिक बाधाओं ने उनके प्रवसन और विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जैसे-जैसे वे फैलते गए, मानसून ने प्रारंभ में बसने वालों को पहाड़ी जातियों ('एफ', 'एच'), सूखी जमीन के किसानों (एल1) और तटीय मछुआरों में रूपांतरित कर दिया जिससे ये सभी गतिहीन जीवन गुजारने लगे। पलियार, पुलयार, इरुलर, कादर जैसे इस प्रकार के चिह्नक रखने वाले कई लोगों का जिक्र संगम साहित्यों में किया गया है। पहले से वास करने वाले इन लोगों ने द्रविड़ सांस्कृतिक क्रांति को -30,000 वाईबीपी (वर्तमान से 30,000 वर्ष पहले), में ही प्रोत्साहित किया क्योंकि उत्तम व्याकरण के साथ तमिल संगम साहित्य की अवधि ईसा पूर्व 250 में मानी जाती है, जिसमें एक बेहद विकसित सुसंगठित समाज की व्याख्या की गई है। हमने तमिल समाज को सात विभिन्न कामकाजी और जीविका कार्यक्षेत्रों में विभाजित किया और हमने प्रदर्शित किया है कि 7,000 वाईबीपी पहले ही इस प्रकार की जीविका, स्थान आधारित जीवन शैली की आबादी अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी, और पिछले 3,000 वर्षों से इन जीविकाओं के बीच कोई भी अधिमिश्रण घटित नहीं हुआ है।

दिलचस्प बात यह है कि पुरुष गुणसूत्र चिह्नक एल1 (उद्भव 45,000 वर्ष पहले) जिसे कई विद्वानों ने द्रविड़ियन के लिए एक चिह्नक होने का संकेत दिया है, वह सर्वाधिक बारंबरता और विविधता के साथ तमिलनाडु की कई सूखी भूमि खेतिहर समुदायों के प्रत्येक दूसरे व्यक्ति में उपस्थित है, जैसे-जैसे हम उत्तर दिशा की तरफ बढ़ते जाते हैं, यह अनुपात कम होता जाता है, और केंद्रीय द्रविड़ बोलने वाले क्षेत्र में यह पूरी तरह अनुपस्थित है। इससे ताज्जुब होता है कि क्या द्रविड़ सांस्कृतिक तत्व मध्य भारत से दक्षिणवर्ती भारत तक बहुत पहले ही निर्धारित किया जा चुका था; इसे पहले के एक चिह्नक, भारत के लिए 'एच' नामक स्थानक से रेखांकित किया गया है। दिलचस्पी की बात यह है कि भाषा और पुरुष गुणसूत्रों के बीच भी अच्छा सहसंबंध हैः हमने लाओ क्षेत्र से ओ2ए के उद्भव के लिए साक्ष्य प्राप्त किए हैं, और पुरापाषाणयुगीन अवधि के दौरान ये लोग इन गुणसूत्रों तथा ऑस्ट्रो एशियाटिक भाषा को भी लेकर आए। ठीक इसी प्रकार, उत्तरी भारत एवं इंडो-गंगा दोआब में बोली जाने वाली भारतीय यूरोपीय भाषाएं मध्य एशिया एवं पूर्वी यूरोप में वितरित आर1 नामक एक बड़ी पुरुष शाखा के अनुरूप हैं। भारतीय विद्वानों ने इसे भारत के लिए स्थानिक बनाने का प्रस्ताव रखा है। सवाल यह है कि क्या ये पुरापाषाणयुगीन चरवाहे थे, और जल को उपयोगी बनाने वाली प्रौद्योगिकी, नदियों से होने वाली सिंचाई और दलदली जमीन की खेती करने वाले किसान थे, इस तथ्य को जीनोम के साथ और अधिक सहयोजित करने की जरूरत है। इस प्रकार, भारत में दो तरह के देशांतरणों का प्रवेश हुआः एक पूर्व ऐतिहासिक अवधि के दौरान कबीलों के रूप में तथा दूसरा अधिकतर प्रौद्योगिकी, पालतू बनाने एवं अन्वेषणों के साथ सुचारु स्तर पर एक संगठित समाज के रूप में। दक्षिणी भारत लंबे समय तक दूसरे प्रकार के हस्तक्षेपों से बिना प्रभावित हुए शांत बना रहा और इसीलिए हम आज भी इतने पुराने संकेतों को प्राप्त कर लेते हैं। पुरालेखों के रिकॉर्डों से भी इसका समर्थन प्राप्त होता है कि अभी हाल तक चोला अवधि के दौरान समाज नारी केंद्रित था, और केवल संगठित कृषि, एकल काश्तकारी एवं पितृसत्तात्मक समाज के उद्भव के साथ पुरुषों का आधिपत्य और परिवार तथा जीवन शैली का वर्तमान रूप प्रचलन में आया।

हमारे जीनोम की जांच के अध्ययन दो अनूठी प्रकार की तकनीक का इस्तेमाल करते हैं। एक आरईसीओ प्रोजेक्ट है, जो प्रवसन का पता लगाने के लिए एक चिह्नक के रूप में गुणसूत्रीय पुनर्संयोजन का उपयोग करता है तथा दूसरा जीनोचिप, जो 60,000 डीएनए एसएनपी को प्रदर्शित करता है। इनसे संकेत मिलता है कि दक्षिण भारत प्रारंभिक वास एवं विस्तार का केंद्र था। इसके अतिरिक्त, पुरुष गुणसूत्रों के साथ संपूर्ण जीनोम का एक बढ़िया संयोजन है, जो संकेत देता है कि बाद के दिनों के सांस्कृतिक क्रांति ने निश्चित रूप से जीन पूल को काफी प्रभावित किया और यह अनिवार्य रूप से पुरुष मध्यस्थता का मामला था।

इस प्रकार, भारतीय जीन पूल का जीनोमिक उद्भव भले ही प्राचीन प्रवजनों से हो, स्थानिक विस्ताार और भौगोलिक तथा जीविका आधारित सह एकाकीपन का परिणाम निश्चित रूप से विभिन्न क्षेत्रों एवं जनसंख्याओं के वर्तमान परिदृश्य के रूप में सामने आया होगा। 'धर्म' एवं 'जाति प्रणाली' ये दोनों ही सांस्कृतिक क्रमिक विकास केवल कुछ ही हजार वर्ष पुराने हैं, जबकि जीविका आधारित विभाजित समाज चिर स्थायी मानव क्रमिक विकास की एक प्राकृतिक घटना है। भारत और विशेष रूप से दक्षिणी भारत इस मामले में शेष दुनिया से अलग है, और इन जनसंख्या क्षेत्रों में कई बीमारियों का जवाब छुपा हो सकता है, जैसाकि हमने कुष्ठ रोग जीनोम जांच में प्रदर्शित किया है। इस प्रकार 'सभी संक्रमितों में बीमारी विकसित नहीं होती' और आपका मेजबान जीनोम इसका फैसला करने में सर्वोपरि है। भारत की व्यक्त विविधता उसके दीर्घकालिक क्रमिक विकास में है, और यह विविधतापूर्ण जीविका, परिदृश्य, स्थान और संस्कृति का अधिक परिणाम है। ■

सर्वाधिक उपेक्षित जनजाति समूह

देश में सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूहों के लोगों की कुल जनसंख्या 27.68 लाख है, और इन समुदायों की कुल संख्या 71 है। इनमें से 19 समुदाय तो ऐसे हैं, जिनकी जनसंख्या एक हजार से भी कम है। सर्वाधिक जनसंख्या महाराष्ट्र के माडिया गोंड (1618090) तथा ओडिशा के सौडा (534751) जैसे समुदायों की है। सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूह सात राज्यों महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में आबाद हैं

■ प्रो. पी. वेंकट राव
मानव-शास्त्र विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय

भारतवासियों में सर्वाधिक कमजोर और सबसे कम संख्या में वे तबके हैं, जिन्हें सर्वाधिक उपेक्षित जनजाति समूह के नाम से जाना जाता है। ये वे समुदाय हैं, जो सबसे अलग-थलग और पिछड़े हैं। इनकी समस्याएं अलग हैं। इन तबकों पर विशेष ध्यान दिए जाने की जरूरत है। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं, जिन पर लुप्त हो जाने का खतरा मंडरा है। उनकी जटिल जीवन स्थितियों ने विभिन्न सरकारी रिर्पोटों तथा विशेषज्ञों का ध्यान खींचा है। विशेषज्ञों ने खास प्रकार की समस्याओं, जरूरी नहीं कि वे गरीबी की समस्या से ही जुड़ी हों, का सामना कर रही जनजातियों की पहचान की जरूरत जतलाई है। किसी मुफीद शब्द न मिल पाने के कारण इनके लिए आदिम जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया।

पहली दफा गृह मंत्रालय ने 1979 में जारी अपने एक पत्र के माध्यम से ऐसे समूहों की पहचान के लिए मानदंड की बाबत बताया। मानदंड में ये शर्तें शामिल थीं : 1) वन-आधारित आजीविका, 2) खेतीबाड़ी करने का पुराना तौर-तरीका, 3) स्थिर या घटती जनसंख्या, 4) साक्षरता की नीची दर, तथा 5) गुजर-बसर लायक अर्थव्यवस्था। वन-आधारित आजीविका सख्त वन कानूनों के चलते व्यवहार्य नहीं रह गई है। इनमें से कुछ समूहों को वन्य जीव अभयारण्य बनाने के क्रम में विस्थापित होना पड़ा है। वनोपज भी कम हो गई। इस प्रकार के जनसमूहों को घोर गरीबी का सामना करना पड़ता है। अध्ययनों से पता चला है कि इन जनसमूहों में कुपोषण संबंधी मामले और विकार खासे हैं। खेती करने के पुराने तौर-तरीकों और तकनीकों के चलते इनकी शिकार करने, वनोपज एकत्रित करने, मछली पकड़ने, खेती झूम तरीके को अपनाने जैसी बातों पर इन समूहों की निर्भरता बनी रहती है। सो, इन्हें घुमंतू या खानाबदोशी जीवन गुजारना पड़ता है।

इनके लिए भोजन मुहैया कराना पहली प्राथमिकता है। तत्पश्चात रोजगार गारंटी और अन्य विभिन्न प्रयास किए जाने आवश्यक हैं, जिससे इनका विकास हो सके। घटती या स्थिर जनसंख्या से इन जनसमूहों में गंभीर स्वास्थ्य, पोषण और प्रजनन संबंधी समस्याओं के संकेत मिलते हैं। इन्हें खाद्य असुरक्षा के साथ ही खून की बेहद कमी और मलेरिया जैसी अनेकों व्याधियों से भी जूझना पड़ता है। कुछ जगहों पर सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूहों को यौनिक बीमारियों समेत तमाम स्वास्थ्य समस्याओं का शिकार होना पड़ता है। कुपोषण भी इनकी एक बड़ी समस्या है। कम संख्या में होने के कारण इनकी समस्याओं की तरफ सहसा ध्यान नहीं जाता। सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूहों में अभी तक सबसे ज्यादा ध्यान अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूहों में रह रहे अंडमानी जनसमूह पर ही दिया जा सका है। वह भी उनकी तेजी से कम होती संख्या के कारण। मध्य प्रदेश में 1979 में राज्य सरकार को सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूहों को परिवार नियोजन कार्यक्रम की जद से बाहर रखने के लिए अधिसूचना जारी करनी पड़ी थी। बैगा, पहाड़िया, कमार जैसे समुदायों को परिवार नियोजन के स्थायी तरीकों की जद से बाहर रखा गया ताकि इनकी संख्या में और गिरावट न आने पाए। साक्षरता के नीचे स्तर के चलते गरीबी और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के साथ ही खानाबदोशी जीवन के हालात इनके सामने बने रहते हैं। जनजातीय समूहों में साक्षरता का स्तर नीचा होने से उन्हें नये हुनर सिखाने में अड़चन आती है। वे रोजगार पाने लायक नहीं बन पाते। इससे उनकी जागरूकता प्रभावित होने के साथ ही उनके शोषण का निशाना बन जाने की आशंकाएं बराबर बनी रहती हैं। जीवन गुजारे लायक बना देने वाली अर्थव्यवस्था का अर्थ है जटिल जीवन। भोजन और नकदी की कमी। इन हालात में वे गरीबी के दलदल में फंसे रहते हैं।

असुरक्षित और हाशिये पर पड़े समुदाय

अभी हाल तक सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूहों को पूरी उपेक्षा के अंदाज में आदिम जनजातीय समूह करार देते हुए अनुसूचित जनजातियों के सबसे निचले दरजे के जातीय सूमह समझा जाता था। कई जनजातीय इलाकों में ये समुदाय हाशिये पर हैं, जहां थोड़ी विकसित अनुसूचित जनजातियां इन पर दबदबा बनाए रखते हुए इनका शोषण करती हैं। ये असुरक्षित और उपेक्षित हैं क्योंकि संसाधनों की कमी होने के चलते इनकी आजीविका जटिल हो गई है। नीचा साक्षरता एवं शैक्षणिक स्तर, जीवन की कम प्रत्याशिता, उच्च मृत्यु दर तथा रुग्णता, गरीबी और मानव तस्करी, अभावग्रस्तता और शोषण जैसी बातों से इनकी उपेक्षा और असुरक्षा की झलक मिलती है। देश में तमाम विकासात्मक गतिविधियां चलाई गईं लेकिन इनके हालात में सुधार नहीं आ पाया। इनके प्रश्रय स्थलों पर वन कानूनों का खतरा बना रहता है। विकास परियोजनाएं भी उनके रिहायशी इलाकों पर खतरे से कम नहीं। उन पर अपनी जमीन और रिहायश से उजड़ने का खतरा मंडराता रहता है। चौंकाने वाली बात यह कि कुछ समुदायों को भले ही सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूहों के तौर पर पहचाना जाता रहा हो, लेकिन उन्हें अनुसूचित जाति का दरजा हासिल नहीं है, या यह दरजा हाल में प्रदान किया गया है। इनमें से अनेक समुदाय अनुसूचित क्षेत्रों से बाहर रहते हैं। उन्हें विशेष संवैधानिक प्रावधानों से संरक्षण हासिल नहीं है।

साक्षरता के नीचे स्तर के चलते गरीबी और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के साथ ही खानाबदोशी जीवन के हालात जनजातीय समूहों के सामने बने रहते हैं। इनमें साक्षरता का स्तर नीचा होने से इन्हें नये हुनर सिखाने में अड़चन आती है। वे रोजगार पाने लायक नहीं बन पाते।

भारत सरकार के जनजाति मामलों के मंत्रालय द्वारा जारी भारत में अनुसूचित जनजाति (2013) के आंकड़ों से पता चलता है कि देश में सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूहों के लोगों की कुल जनसंख्या 27.68 लाख है, और इन समुदायों की कुल संख्या 71 है। इनमें से 19 समुदाय तो ऐसे हैं, जिनकी जनसंख्या एक हजार से भी कम है। सर्वाधिक जनसंख्या महाराष्ट्र के माडिया गोंड (1618090) तथा ओडिशा के सौडा (534751) जैसे समुदायों की है। लेकिन चिंतानजक रूप से सबसे कम जनसंख्या अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूहों में आबाद सेंटिनेलिज (15) तथा ग्रेट अंडमानिज (44) समुदायों की है। सर्वाधिक उपेक्षित जनजातीय समूह सात राज्यों महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में आबाद हैं। इन समुदायों की राज्यवार संख्या इस प्रकार है : आंध्र प्रदेश और तेलंगाना (12), बिहार (9), गुजरात (5), झारखंड (9), कर्नाटक (2), केरल (5), छत्तीसगढ़ समेत मध्य प्रदेश (7), महाराष्ट्र (3), मणिपुर (1), ओडिशा (13), राजस्थान (1), तमिलनाडु (6), त्रिपुरा (1), उत्तर प्रदेश (2), उत्तराखंड (2), प. बंगाल (3) तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह (5)।

जारवा, सेंटिनेलिज, शोम्पेंस और चोलानयाकांस जैसे सर्वाधिक जाने-पहचाने समुदायों को धरोहर समूह के तौर पर चिह्नित किया गया है। इनमें पहले तीन समूह अंडमान द्वीप समूह में आबाद हैं, जबकि चोलानयाकांस, जो 'केरल के गुफावासी' के नाम से जाने जाते हैं, केरल में रहते हैं। ग्रेट अंडमानिज जैसे समुदायों के लुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। बिरहोर, चेंचुस, जेनु कुरुबस जैसे छोटे और सीमांत समूह भी हैं, जो अन्य समुदायों के रिहायशी क्षेत्रों के बाहरी इलाकों में रहते हैं। जिन समूहों पर सर्वाधिक खतरा है, उनमें ओडिशा के बोंडोस, केरल के चोलानयाकांस, छत्तीसगढ़ के अबूझ माडिया और झारखंड के बिरहोर शामिल हैं। ये समुदाय अनुसूचित जनजातियों से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं है, उनके शोषण का शिकार होते हैं। चेंचुस, जो आजीविका के लिए वनोपज इकट्ठा करने के लिए जाने जाते हैं, वन कानूनों के तहत लागू प्रतिबंधों के चलते गंभीर रूप से प्रभावित हो रही है। राजस्थान की सहारिया जैसी जनजातियां भी हैं, जिन्हें आजीविका के लिए बंधुआ मजदूर बनने को विवश होना पड़ रहा है।

उपेक्षित जनजातीय समुदायों के चिंताजनक हालात और उनके लिए कुछ विशेष किए जाने की जरूरत के मद्देनजर उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर करने और उनमें शिक्षा का आलोक फैलाने की गरज से पृथक योजनाएं आरंभ की गईं। इस बाबत सिफारिश की गई कि पारिस्थतिकी को ध्यान में रखते हुए इन समुदायों के लिए कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए। उनकी पारंपरिक दक्षताओं और पारिस्थितिकी को अक्षुण्ण बनाए रखने को सर्वोच्च प्राथमिकता की सिफारिश की गई। फिर, स्वास्थ्य और शैक्षणिक सेवाओं और सुविधाओं तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करने की बात भी कही गई। कमान क्षेत्रों, जहां वे अपनी आजीविका अर्जित करते हैं, के संरक्षण के लिए विशेष कानून बनाए जाने जरूरी हैं। सुझाया गया है कि प्रत्येक समूह के परिवार को एक इकाई मानते हुए विशेष कार्यक्रम बनाकर क्रियान्वित किए जाने चाहिए। साथ ही, ऐसे विकास कार्यक्रम शुरू किए जाएं जिनमें मानवीयता का पुट हो। इन समुदायों की जरूरतों के मद्देनजर समुचित रणनीति के साथ कार्यक्रम तैयार करके विभिन्न क्षेत्रों में इन्हें क्रियान्वित किया जाना चाहिए। न केवल इतना बल्कि कार्यक्रमों और योजनाओं के क्रियान्वयन की पृथक प्रशासनिक इकाई निगरानी करे। ■

भारत में जनजातियां

■ प्रो. वी.के श्रीवास्तव
मानव-शास्त्र विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट, जो डॉ. के. सुरेश सिंह के निर्देशन में संपन्न हुआ है, ने भारत में 4,635 समुदायों की पहचान की है। इनमें से 461 समुदाय अनुसूचित जनजाति से संबद्ध हैं। अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय जनजाति नीति का मसौदा पहली बार फरवरी, 2004 में पेश किया गया था। इसमें भारत में 698 जनजाति समुदाय होने की बात कही गई थी। इस मसौदा का दूसरा संस्करण जुलाई, 2006 में जारी किया गया। इसमें 700 से ज्यादा जनजातियों होने की बात कही गई। भारत जनगणना, 2011 ने 705 जनजातियां गिनाई गईं। समय के साथ जनजातीय समुदायों को बढ़ती संख्या के मद्देनजर कहा जा सकता है कि अनुसूचित जनजातियों की सूची में ज्यादा से ज्यादा समुदायों को जोड़ा जाता रहा है। वर्ष 2011 में इन समुदायों की जनसंख्या भारत की कुल आबादी में 8.2 से बढ़कर 8.6% हो गई थी। डॉ. सुरेश सिंह ने 1993, जो संयुक्त राष्ट्र द्वारा घरेलू जनसंख्या पर केंद्रित किया गया था, में ध्यान दिलाया था कि अनुसूचित जनजाति में शुमार किए जाने के लिए एक हजार से ज्यादा मामले देश की विभिन्न अदालतों में लंबित थे। पक्की बात है कि जब भी इन मामलों का निपटारा होगा, अनुसूचित जनजातियों की संख्या बढ़ जानी है।

भारत में अनुसूचित जनजातियों की सूची में अनेक विसंगतियां देखने में आई हैं। इस प्रकार के उदाहरण दिए जाते रहे हैं कि कुछ समुदाय किसी एक क्षेत्र में अनुसूचित समुदाय में शुमार किए जा रहे हैं, तो किसी अन्य क्षेत्र में उन्हें इस सूची में स्थान नहीं दिया गया है। रबाड़ी समुदाय इसका एक जीता-जागता उदाहरण है। इस समुदाय को गुजरात में अनुसूचित जनजाति में गिना जाता है, लेकिन राजस्थान में अन्य पिछड़ा वर्ग में। इस प्रकार के उदाहरणों की भरमार है, तो इसीलिए कि भारत के संविधान मे जनजाति शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। दरअसल, जनजाति शब्द को परिभाषित करने के बजाय उन समुदायों की पहचान पर ध्यान केंद्रित किया गया जिन्हें अनुसूचित जनजातियों की सूची में शामिल किया जाना है। जनजातीय समुदायों की समस्याओं के समाधान के लिए केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर गठित विभिन्न आयोगों और समितियों की रिपोर्टों में इस विसंगति की ओर ध्यान दिलाया जाता रहा है। वर्जिनियस सासा की उच्चस्तरीय समिति ने हाल में 2015 में अपनी रिपोर्ट पेश की है। इसमें कुछेक उन महत्त्वपूर्ण मुद्दों की तरफ ध्यान खींचा गया है, जो जनजातीय समुदायों की पहचान के तौर-तरीकों से संबद्ध हैं।

जनजातीय समुदायों की न केवल संख्या ज्यादा है, बल्कि वे सांस्कृतिक रूप से खासी विविधरंगी भी हैं। पंजाब, हरियाणा, केंद्रशासित चंडीगढ़, दिल्ली और पुड्डुचेरी को छोड़कर जनजातियां भारत के सभी हिस्सों में आबाद हैं। वे जहां कहीं भी आबाद हैं, रहन-सहन के वहीं के स्थानीय तौर-तरीकों को अपनाए हुए हैं। इस कारण से एक ही समुदाय में खासी सांस्कृतिक भिन्नता देखने को मिलती है। भील समुदाय का उदाहरण लिया जा सकता है। यह समुदाय भारत का सबसे बड़ा जनजातीय समुदाय है। इसके बाद नम्बर आता है, गोंड, संथाल और मीणा समुदायों का। भील राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और अन्य कुछ राज्यों में आबाद हैं। प्रत्येक राज्य में वे सिरे से अलग दिखलाई पड़ते हैं। अलबत्ता, उनकी पहचान उनके सांस्कृतिक अंतर के बावजूद बनी हुई है। जहां कहीं वे रह रहे हैं, स्वयं को भील बताते हैं। सही भी है कि वे अन्य समुदायों से भिन्न है। चाहे अन्य समुदाय भीलों के ही व्यवसाय, आजीविका के तौर-तरीके, जीवन-शैली अपनाए हुए हों या फिर उन्हीं की ही भांति पारिस्थिकी में रह रहे हों लेकिन भील तमाम ऐसे समुदायों से अलग पहचान बताते हैं। दरअसल, इस समुदाय का नाम ही 'चुंबक' की तरह है, जिसकी तरफ समुदाय के तमाम लोग खिंचे चले आते हैं। उनकी यह एकजुटता ही है, जिसके बल पर यह समुदाय अपनी पहचान कायम किए हुए है।

आर्थिक उदारीकरण की नीतियां अपनाए जाने के बाद से अनेक निजी निगम जनजातीय क्षेत्रों में पहुंच गए हैं, ताकि बड़ी औद्योगिक परियोजनाएं जमा सकें। कहना न होगा कि जनजातीय समुदायों ने इस कवायद का जोरदार विरोध किया है। इस कारण उन्हें 'विकास विरोधी' भी करार दिया गया

वैश्वीकरण का प्रभाव

जनजातीय समुदायों का करीब-करीब प्रत्येक अध्ययन इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि अनंतकाल जनजातीय समुदाय परस्पर सहयोग के तौर-तरीकों में बंधे हैं। लेकिन बीते लगभग दो दशकों से यह प्रक्रिया तेजी से बढ़ी है। वैश्वीकरण, जिसने समूचे विश्व को प्रभावित किया है, की प्रक्रिया इसका बड़ा कारण माना जा रहा है। जंगलों और पहाड़ी क्षेत्रों में रह रहे छोटे समुदाय तक वैश्वीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित हुए बिना न रह सके हैं। सो, इन समुदायों में बदलाव तेजी से हो रहा है। दूसरे शब्दों में उनमें अभी तक जो सांस्कृतिक अंतर थे, वे भी इस प्रक्रिया के चलते धुंधले पड़ते जा रहे हैं। इन सांस्कृतिक अंतरों के चलते ही ये समुदाय परस्पर पृथक बने हुए थे। अगर उनके जीवन के कुछ हिस्सों में सांस्कृतिक अंतर धुंधले पड़ रहे हैं, तो कुछ अन्य मामलों में वे अपनी पहचान को पुख्ता करने में भी जुटे हुए हैं। उदाहरण के लिए अनेक जनजातीय समुदाय अपनी लिपि तैयार करने में जुटे रहे हैं। सरकार से अपनी भाषा को मान्यता देने की मांग करते रहे हैं। यही बात उनके रीति-रिवाजों, त्योहारों और रस्मों के लिए भी कही जा सकती है। इसलिए वे जहां एक तरफ शेष विश्व से मिलने की ओर बढ़ रहे हैं, तो वहीं अपनी पहचान को बनाए रखने को भी तत्पर हैं। दूसरे शब्दों में जनजातीय लोगों की दुनिया अपने तईं अनूठी है। समय के साथ इसका अनूठापन बना रहा है। यहां तक कि स्व. प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू तक चाहते थे कि सरकार वे तमाम उपाय करे जिनसे जनजातीय संस्कृति जीवंत बनी रह सके। चाहते थे कि इनको अपना भाग्य-नियंता बनने दीजिए। किसी को भी अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए कि अपने सांस्कृतिक तौर-तरीके इन लोगों पर थोपे।

कहना न होगा कि विकास के तमाम पैमानों पर जनजातीय समुदाय पिछड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए 1993-94 में भारत में 45.7% लोग गरीबी की रेखा से नीचे थे। उसी वर्ष 63.7% जनजातीय लोग गरीबी की रेखा से नीचे थे। वर्ष 2001 में जनजातीय लोगों में शिक्षा का स्तर राष्ट्रीय साक्षरता दर 69% की तुलना में मात्र 47% था। पांच साल तक बच्चों की बाल मृत्यु दर के मामले में राष्ट्रीय आंकड़े प्रति हजार 62.1 की तुलना में जनजातीय समुदायों में यह दर 95.7% थी। खेतीबाड़ी से जुड़े जनजातीय लोगों का प्रतिशत 2001 में 68% से गिरकर 49% रह गया था, जबकि खेत-मजदूरी करने वाले जनजातीय लोगों का प्रतिशत 20 से बढ़कर 37% हो गया था। इन तमाम आंकड़ों से पता चलता है कि जनजातीय समुदायों में भूमिहीनता का रूझान बढ़ने पर है।

कभी शासक थे जनजातीय समुदाय

एक समय जनजातीय देश के शासक थे। वे ही थे, जिन्होंने सबसे पहले यहां बस्तियां बसाई थीं। वे यहां पुरसुकून जीवन गुजार रहे थे कि बाहरी लोगों ने धावा बोल कर तमाम जमीन कर कब्जा कर लिया। ब्रिटिश के आने के बाद जनजातीय क्षेत्रों में बाहरी लोगों की आवाजाही बढ़ गई। बाहरी लोगों ने जनजातीय समुदायों की जमीन और अन्य संसाधनों पर कब्जा कर लिया। कभी अपनी जमीन पर सिर उठा कर रह रहे जनजातीय समुदाय अपने ही क्षेत्र में गुलाम बनने को विवश हो गए। इस प्रकार जनजातीय लोगों के हाशिये पर जा छिटकने का सिलसिला शुरू हो गया। इन हालात में सबसे जरूरी बात यह थी कि जनजातीय लोगों के अधिकारों की रक्षा की जाए। जरूरी था कि महत्त्वपूर्ण विकासात्मक उपाय किए जाएं। साथ ही, शैक्षणिक संस्थानों, राजनीतिक मंचों और अन्य कल्याणकारी उपायों से उन्हें राहत पहुंचाने की गरज से आरक्षण की सुविधा मुहैया कराई जाए। जनजातीय क्षेत्र खनिज, वन संपदा और जल संसाधनों की दृष्टि से समृद्ध थे। बाहरी लोग जनजातीय लोगों की जमीन पर काबिज होना चाहते थे, ताकि इन संसाधनों का व्यावसायिक दोहन कर सकें। इतना ही नहीं बाहरी लोग जनजातीय इलाकों में विकास परियोजनाएं जमाना चाहते थे। इन तमाम बातों ने जनजातीय लोगों को उनके इलाकों से उजाड़ना शुरू कर दिया। विकास कार्यक्रमों के चलते जो लोग विस्थापित हुए हैं, उनमें 40% से ज्यादा लोग जनजातीय ही हैं।

आर्थिक उदारीकरण की नीतियां अपनाए जाने के बाद से अनेक निजी निगम जनजातीय क्षेत्रों में पहुंच गए हैं, ताकि बड़ी औद्योगिक परियोजनाएं जमा सकें। कहना न होगा कि जनजातीय समुदायों ने इस कवायद का जोरदार विरोध किया है। इस कारण उन्हें 'विकास विरोधी' भी करार दिया गया। कई जनजातीय क्षेत्रों में जो उग्र व हिंसक रुकावटें डाली गई हैं, वे ऊपर की ओर विकास के तरीके को अपनाए जाने के कारण ही हुईं। जरूरी हो गया है कि जनजातीय समुदायों की आवाज को सुना जाए। वास्तव में, अभी तैयार मसौदे में जनजातीय समुदायों के विकास के लिए जो मंसूबे बांधे गए हैं, उनमें जनजातीय लोगों को साथ लिए जाने पर बल दिया गया है। उन्हें यह अधिकार दिए जाने की बात कही गई है कि वे अपने समाज में जो भी बदलाव लाना चाहें, ला सकें। जिस तरह के विकास से वे अपनी खुशहाली की उम्मीद करते हैं, उस प्रकार के विकास की धारा उनके लिए बहने दी जाए। सरकार का दायित्व है कि उन्हें पूरा संरक्षण दे। उनकी संस्कृति की स्वायत्तता का सम्मान करे। उनकी जीवन शैली और सोच की गरिमा बनाए रखे। तभी जनजातीय समुदायों में असंतोष को कम नहीं किया जा सकेगा। ■